भारतीय शासन अधिनियम, 1935

अधिनियम की विशेषताएँ

1) संघात्मक रूप -

यह भारतीय शासन का अधिनियम 1935 की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी। इस अधिनियम के अधिकांश महत्वपूर्ण या आधारभूत प्रावधानों का संबंध अखिल भारतीय संघ की प्रस्तावित योजना से था। यह संघ ब्रिटिश भारत के विभिन्न प्रांतों और देशी रियासतों को मिलाकर बनाया जाना था।

2) प्रांतीय स्वराज -

1935 के संविधान की दूसरी प्रमुख विशेषता प्रांतों को दिया गया स्वराज्य था। 1919 के भारतीय शासन अधिनियम ने प्रांतों को आंशिक उत्तरदायी शासन प्रदान किया जो द्वैध शासन प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 1935 के शासन अधिनियम द्वारा प्रांतों को स्वायत्ततापूर्ण पद प्राप्त हुआ और प्रांतीय क्षेत्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई।

3) केन्द्र में द्वैध शासन-प्रणाली -

यद्यपि 1935 के शासन अधिनियम द्वारा प्रांतों में द्वैध शासन-प्रणाली का अन्त किया गया फिर भी इसके अनुरूप शासन-

- प्रणाली की योजना केन्द्रीय क्षेत्र के लिए स्वीकार की गई।

4) <u>अनेक आरक्षण व संरक्षण</u> -

प्रान्तीय क्षेत्र में प्रान्तीय स्वराज व केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन दोनों पर ही पर अनेक सीमाएं व प्रतिबंध लगाए गए थे। प्रान्तीय मंत्रियों से गवर्नरों को अनेक कार्य अपने विवेकानुकूल अर्थात मंत्रियों से परामर्श लिए बिना ही करने की शक्ति मिली थी। विशेष उत्तरदायित्वों से संबंधित मामलों में गवर्नरों के लिए मंत्रियों से परामर्श लेना तो आवश्यक था, किन्तु इनमें निर्णय गवर्नर स्वयं ही करते थे। इस प्रकार गवर्नरों को अनेक विशेष शक्तियाँ प्राप्त थीं। यद्यपि केन्द्रीय क्षेत्र में आंशिक उत्तरदायी शासन दिया जाने को था फिर भी गवर्नर-जनरल को इस क्षेत्र में अनेक विशेष शक्तियाँ प्राप्त थीं। ये आरक्षण और संरक्षण इस अधिनियम के उतने ही महत्वपूर्ण अंग थे जितने कि संघ व प्रान्तीय स्वराज की योजनाएं। इनके द्वारा एक ओर विधानमंडलों की शक्तियों पर अनेक सीमाएं लगी हुई थीं, दूसरी ओर कार्यपालिका के अधिकारों -

गवर्नर-जनरल या गवर्नरों को मंत्रियों के परामर्श के विरुद्ध कार्य करने तथा उनके कार्यों में हस्तक्षेप करने की विभिन्न शक्तियाँ प्रदान की गई थी। आपात् काल में आवश्यकता पड़ने पर तो सम्पूर्ण शासन की बागडोर शासनाध्यक्ष अपने हाथों में ले सकते थे।

5/ संघीय न्यायालय —

चूंकि 1935 के भारतीय शासन अधिनियम ने भारत को संघात्मक संविधान प्रदान किया अतएव एक संघीय न्यायालय की व्यवस्था भी की गई। लेकिन संघीय न्यायालय भारत का उच्चतम न्यायालय नहीं था। इसमें तथा उच्च न्यायालयों से विभिन्न प्रकार के मुकदमों की अपीलें इंग्लैंड स्थित प्रिवी कौंसिल द्वारा सुनी जाती थी।

6/ विधानमंडलों का परिवर्तन और मताधिकार का विस्तार —

1935 के अधिनियम ने भारतीय संविधान में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह किया कि विधानमंडलों की सदस्य-संख्या में पर्याप्त वृद्धि की गई। प्रस्तावित संघ के

उपरवाले और निचले सदनों में क्रमशः 260 और 375 सदस्य होते, प्रांतीय विधान सभाओं की सदस्य संख्या भी पूर्व स्थिति से प्रायः दोगुनी कर दी गई थी और 6 प्रांतों में द्विसदनीय विधानमंडल बनाए गए थे। प्रांतीय विधान सभाओं के लिए मताधिकार इतना विस्तृत बनाया गया था कि 10 प्रतिशत से अधिक जनता को मतदाताओं की सूची में सम्मिलित किया जा सका किंतु साथ ही साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति को अत्यधिक व्यापक बनाया गया।

7) सांविधानिक पद की समस्या

1935 के मौलिक भारतीय शासन विधेयक में प्रावधान न किया गया था जिसके अभाव में अधिनियम के ध्येय व विस्तार का निश्चित पता लगाना संभव न था। किंतु सब इस आधार पर विधेयक की कटु आलोचना की गई तो ब्रिटिश संसद ने इस अभाव की पूर्ति 1919 वाले अधिनियम की प्रस्तावना जोड़कर की। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार का ध्येय भारत में क्रमिक विकास द्वारा उत्तरदायी शासन की स्थापना करना होगा

किंतु इसमें एक अन्तर यह हुआ कि अब यह ध्येय ब्रिटिश भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत के लिए अपनाया गया। इस प्रस्तावना से भारतीयों को तनिक भी संतोष नहीं हुआ। इसका तो ब्रिटिश मजदूर दल के सदस्यों ने भी विरोध किया था, क्योंकि यह भारतीयों को स्वशासन के लिए माँग के सम्बन्ध में सरकार के इरादों को पर्याप्त रूप से व्यक्त नहीं करता था।

8) **ब्रिटिश संसद का नियंत्रण –**

1935 के भारतीय शासन अधिनियम के निर्माताओं ने भारत के लिए उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया किन्तु, साथ ही साथ उस संविधान में ऐसे अनेक प्रावधानों का समावेश किया गया जो उत्तरदायी शासन के विरोधी अथवा उसमें बाधा डालने वाले कहे जा सकते थे।

एक ओर तो गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को विभिन्न प्रकार से विशेष आपात-कालीन शक्तियाँ सौंपी गई जिनके प्रयोग करने पर वे भारतमंत्री के नियंत्रण के अधीन रहे। दूसरी ओर भारत-मंत्री को विदेशी मामलों, अखिल भारतीय सेवाओं और उच्च पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में तथा

तथा सम्राट के परामर्शदाता के रूप में अनेक शक्तियाँ प्राप्त रहीं।
तीसरे भारतीय संविधान में कोई भी महत्वपूर्ण संशोधन करने की शक्ति पार्लियामेन्ट के हाथों में रही, जिसने 1935 का अधिनियम पास किया था। अतः ब्रिटिश पार्लियामेंट को भारतीय शासन के सम्बन्ध में सर्वोपरि सत्ता प्राप्त थी, जिसका प्रयोग वह कभी भी कर सकती थी।
चौथे, ब्रिटिश पार्लियामेन्ट का नियंत्रण एक-दो बातों में बढ़ा हुआ रहा। इस संविधान में गवर्नर-जनरल गवर्नरों को दिए जाने वाले निर्देश-पत्रों पर स्वीकृति प्रदान करने तथा नियंत्रण व हस्तक्षेप का अधिकार पार्लियामेंट को मिला। ऐसे ही कौंसिल के आदेशों (order-in Council) सम्बन्धी प्रावधानों के अन्तर्गत पार्लियामेंट को भारतीय नीति और प्रशासन सम्बन्धी अनेक विषयों की बातों में हस्तक्षेप का अधिकार मिला। इससे स्पष्ट है कि गृह-सरकार की शक्तियों में कोई विशेष कमी न की गई थी।

9) बर्मा, बरार व अदन —

बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया। अदन को भारत सरकार के प्रशासनिक नियंत्रण से निकालकर उपनिवेश

विभाग (Colonial office) के नियंत्रण अधीन कर दिया गया। ये परिवर्तन 1 अप्रैल 1937 से लागू हुआ। बरार प्रांत कानूनी दृष्टि से अभी तक हैदराबाद के निजाम की सर्वोपरीता के अधीन रहा, किंतु उसे शासन के लिए मध्य प्रांत के साथ मिला दिया गया और मध्य प्रांत व बरार एक गवर्नर का प्रांत रहा।

लेकिन सरकार यह चाहती थी कि वास्तविक सत्ता राष्ट्रवादी व प्रगतिशील तत्वों के हाथ में न आ जाए इसलिए संघ शासन की योजना बनायी गयी थी। इसी उद्देश्य से संघीय विधानमंडल में देशी रियासतों को जनसंख्या के अनुपात से अत्यधिक प्रतिनिधित्व दिया गया था और उनके प्रतिनिधि नरेशों द्वारा नामजद होते, जिससे कि उनका दृढ़ गुट ब्रिटिश सरकार की नीति का समर्थन करता रहता। इसी उद्देश्य से देशी नरेशों को अन्य रियासतें भी प्रदान की गई थी जबकि ब्रिटिश भारत के प्रांतों के लिए संघ में सम्मिलित होना अनिवार्य था, देशी नरेशों को इस बात की खुली छूट थी कि वे चाहे तो संघ में प्रवेश करें अथवा नहीं।

अखिल भारतीय संघ निर्माण के लिए एक विशेष विधि निर्धारित की गई थी। संघ की स्थापना तभी होती जब इस संबंध

में सम्राट द्वारा घोषणा की जाती। किन्तु इसके पूर्व कि सम्राट द्वारा ऐसी घोषणा की जाती, यह आवश्यक था कि कुछ शर्तें पूरी की जाए :
पहली, संघ में प्रवेश के लिए कम से कम इतनी देशी रियासतें अपनी सहमति दे दें, जिन्हें संघीय विधानमंडल के ऊपर वाले सदन में 52 प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो। यह संख्या उनके कुल प्रतिनिधियों की आधी थी। दूसरी, संघ में प्रवेश करने वाली रियासतों की जनसंख्या देशी रियासतों की कुल जनसंख्या की कम से कम आधी हो। इसके अतिरिक्त संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रत्येक देशी रियासत के लिए यह आवश्यक था कि उसका शासक प्रवेश पत्र (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर करे। इस प्रवेश पत्र में उन विषयों का उल्लेख किया जाता जिन्हें देशी नरेश संघ सरकार को सौंपता। इसमें उन शक्तियों व कृत्यों को भी वर्णित किया जाता, जिनका प्रयोग संघ सरकार उस रियासत के सम्बन्ध में कर सकती।

संघ योजना की विचित्रताएँ -

प्रस्तावित संघ संसार के अन्य संघों से कई बातों में भिन्न होता। इसमें एक ओर ब्रिटिश भारत के प्रान्त होते

और दूसरी ओर देशी रियासतें, जिनके बीच में शासन व पद सम्बन्धी महत्वपूर्ण विभिन्नताएं पहले से ही थी और संघ में सम्मिलित होने पर भी रहती। जबकि प्रांतों में 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वराज्य स्थापित किया गया था, देशी रियासतों में प्रजातांत्रिक शासन का प्रायः अभाव था। प्रस्तावित संघ में जहां एक ओर देशी रियासतों और ब्रिटिश प्रांतों को मिलाया जा रहा था, दूसरी ओर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एकात्मक ब्रिटिश भारत को विभिन्न स्वशासित प्रांतों में बाँटा गया था।

प्रस्तावित संघ राज्य की इकाईयों में अनेक विचित्रताएँ आ गई थीं। प्रांतों का तो समान संघ से होना उससे बहुत भिन्न देशी रियासतों का होना। इकाईयों की असमानता ने कई समस्याओं को पैदा किया, जैसे संघ के निर्माण, उसमें सम्मिलित होने की विधि, संघीय कार्यपालिका व विधान मंडल के विभिन्न इकाईयों के समान इत्यादि। इस प्रकार प्रस्तावित संघ योजना एक अच्छे संघात्मक संविधान की आवश्यक बातों से भिन्न थी, अतः अन्य संघ राज्यों के बीच महत्वपूर्ण अंतर था।

प्रस्तावित सेवा योजना की आलोचना -

इस सेवा योजना के अनेक गंभीर दोष थे -

1) यह योजना जनता की इच्छा का फल न थी वरन् यह तो ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनी सिद्धि के उद्देश्य से भारतीयों पर थोपी जाने की थी ब्रिटिश संसद की प्रभुसत्ता व भारत-मंत्री की विभिन्न शक्तियाँ जारी रहीं और भारतीय विधानमंडलों को संशोधन की शक्ति प्रदान नहीं की गई थी।

2) इस योजना द्वारा केन्द्र व प्रांतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन नहीं सौंपा गया था। यद्यपि प्रांतों में प्रांतीय स्वराज्य स्थापित किया गया था, फिर भी गवर्नरों को व्यापक और वास्तविक प्रशासनिक व विधायी शक्तियाँ प्रदान की गई थीं।

3) भारतीय विधानमंडलों की शक्तियाँ अति सीमित थीं और उनकी प्रक्रिया पर अनेक प्रतिबन्ध लगाए गए थे।

4) भारत का संघीय न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय नहीं बनाया गया था।

अन्त में इसका सबसे गंभीर दोष यह था कि इसमें भारत के लिए औपनिवेशिक पद का कहीं कोई स्पष्ट और निश्चित उल्लेख न किया गया था। जिसे भारतीय बड़े संदेह की दृष्टि से देखते थे।